E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

भारतीय साहित्यकारों की सांस्कृतिक एवं पारिवारिक मानसिकता का महत्त्व

[1]महाराज सिंह धाकड़

[1]पी-एच.डी. शोधार्थी,सहायक प्राध्यापक,हिन्दी विभाग,शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय श्योपुर (म. प्र.)

Paper Rcevied date

05/03/2025

Paper date Publishing Date

10/03/2025

DOI

https://doi.org/10.5281/zenodo.15001734

ABSTRACT

भारतीय उपन्यासों को या अन्य साहित्य विधाओं को (हिन्दी और मराठी में अनुवादित) पढ़ते समय लेखकों की विशिष्ट मानसिकता का जो सामान्य रूप प्रतीत होता है, उसकी कुछ विशेषताओं को परिभाषित किया जा सकता है। इससे अनुभव विश्व के स्वरूप का कुछ बोध हो सकता है।

भारतीय लेखक आज भी व्यक्ति के रूप में कम परिवार के सदस्य के रूप में ही लेखन करता है। इधर 50-60 वर्षों में हमारी सुरियर, बंधनों से बोझिल वर्जनाओं से लियंत्रित परिवार व्यवस्था पर पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से तथा नगरों में औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप आघात होते जा रहे हैं। ये आघात जितले बौद्धिक हैं, उतने मानसिक नहीं है। आज हमारी परिवार व्यवस्था ने संयुक्त रूप के स्थान पर विभाजित रूप अवश्य ग्रहण किया है परंतु वह विघटित नहीं हुआ है।

हमारे लेखन का अधिकांश अनुभव- विश्व परिवार की नींव विवाह संस्था पर होने वाले आघात. परिवार में बदलते संबंध, परिवार में पिसता व्यक्तित्व, आर्थिक कठिनाइयों में दबे सदस्य का दुःख इत्यादि बातों के इर्द-गिर्द तर काटता है। भारतीय संस्कृति में परिवार का स्थान इतला दृढ है कि व्यक्ति सर्वप्रथम पारिवारिक वास्तविकता से ही परिचित होता है। जाति, वर्ण, धर्म, समाज, राष्ट्र-ये संस्याएं बाद में व्यक्ति के ययार्य विषयक ज्ञाल में प्रविष्ट होती हैं।

मुख्यशब्द- वर्जनाओं, विघटित सर्वप्रथम इर्द-गिर्द, बोझिल ।

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

फ्रायड के कहने में मनुष्य की अधिकांश मानसिकता बत्तपल के चार-पांच वर्षों के संस्कारों पर निर्भर रहती है. अतिशयोक्ति जरूर है परंतु उसमें निहित इस सत्यांश को इन्कार नहीं किया जा सकता कि बचपन का मनुष्य के जीवन में अपरिसीम महत्त्व होता है। यह वास्तविकता है कि भारतीय पारिवारिक जीवन में बच्चों को लाइ प्यार, सुरक्षा की आश्वस्ति. स्थिरता मिलती है-गरीबी के बावजूद, सेवा, त्याग और समझौते के पाठ भी इसी व्यवस्था में मिलते हैं।

समझौते और समन्वय के संस्कार हजारों प्रकार से परिवार में पढ़ाये जाते हैं और परिणामतः मानसिक दृष्टि से विकृत, एकांतिक 'व्यक्ति' कम पाये जाते हैं। हमारे बच्चे बचपन से जीवन को सम्मिलित रूप में भोगते हैं, परिवेश की मार को वैयनिक रूप में नहीं, परिवार के सदस्य के रूप में खेलते हैं. सेवा लेते हैं तो त्याग करना भी जानते हैं. परिणामतः बचपन में अकेलेपन और असुरक्षा की चोट से विचलित कम होते हैं जिसका प्रभाव समस्त जीवन विषयक दृष्टि कोण पर पड़ता है। भारतीय मल प्रायः बहिर्मुखी, स्थिर और नार्मल रहता है।

हमारे परिवारों का अपेक्षाकृत रिवर होला कृषि व्यवस्था के कारण भी है और आज भी नगरों में रहने वाला बहुत बड़ा हिस्सा अपना बचपन गांवों में बिताकर तरुणाई में नगर की ओर आये हुए लोगों का है। अर्थात्, भारतीय लेख्नक पूर्णतः कृषि व्यवस्था से कटा हुआ नहीं है **(1)**

कृषि व्यवस्था में जीवल की मंथर गति ने मल को बहुत वित्तलित नहीं किया है। अधिकांश नगर में रहने वाले लेखक नगर-जीवन की यांत्रिकता, व्यस्तता और मालवीय भावना से रहित संबंधों से खीझते हैं. घृणा करते हैं. कटु रूप में प्रतिकृत होते हैं। वे 'इंटेंसिटी' की अपेक्षा नंबर गति और शांति ही पसंद करते हैं। हमारी आंतरिकता को युद्ध जैसी विस्फोटक वास्तविकता ने गटन स्तर तक अभी तक कभी झकझोरा भी नहीं है।

उपन्यास आधुलिक महाकाव्य है। जिस प्रकार महाकाव्य अनेक सर्गों में विभाजित रहता है, उसी प्रकार उपन्यास भी अलेक अध्याय, अनुच्छेद अथवा खण्डों में विभाजित रहता है। **(2)**

यही कारण है कि युद्ध विषयक साहित्य हम मनोरंजन के रूप में ग्रहण करना चाहते हैं, उससे भयानक रूप से दहल नहीं जाते। आधे मिनट के भूकम्प की वास्तविकता, हमें ग्रकशोर देती है, तब जिन्हें युद्ध ने सतत् मरण भय के कगार पर वर्षों तक खड़ा किया, उनकी मनःस्थिति की हमारे लिए कल्पना भी कठिन है। गौतम बुद्ध ने सर्व क्षणिक के सत्य का साक्षात्कार किया परंतु उनके अनुयायियों के लिए वह अनुभूति अधिकतर बौद्धिक अथवा तार्किक ही थी, वैसी तीव्र निश्चय ही नहीं थी जो संघातक हवाई जहाजों की छाया में रहनेवालों को सहनी पड़ती है। जीवन के प्रत्यक्ष दुःख से सामला न करके उससे भक्तिवाद, मायावाद और नियतिवाद के रूप में छुट्टी पाने का अभ्यास भी भारतीय मन को वर्षों से हुआ है।

शक्तिशाली आक्रामकों का सामना करने की अपेक्षा कछुआ धर्म को अपनाना और कम शक्तिशाली लोगों को अपनी सेवा में लगाकर दया और सहानुभूति के विशद् भावों के लिए अपने को ही धन्य समझना हमारा ऐतिहासिक कार्य रहा है। इन सब बातों ने हमारे मन को गति तीव्रता, संघर्ष, अजस्र दुर्धर्षता और हर क्षण अपने को खतरे में झोंक कर अपने प्राप्त को पाने की आकांक्षा से प्रायः विरत ही किया। इससे कुछ लाभ भी हुए हैं, और इससे कुछ नुकसान भी हुआ है जिसे 'वैश्विक सत्य के प्रति गहन उद्विग्नता' कहा जाता है, उसका निर्माण हमारे साहित्यकारों में प्रायः नहीं होता।

हमारे धार्मिक संगठन ने हमारी मानसिकता को विक्षोभ और घृणा के सांघातिक शोरों पर खड़े होने से बताया। जन्म-पुलर्जन्म की अवधारणाएं पाप पुण्य की कल्पालाएं प्रायश्चित्त के विविध मार्ग, वर्ण जाति का अभिमान इत्यादि बातों के कारण यथास्थिति के प्रति एक संतोषजनक रुख अपनाने की सुविधा हमें मिली।

विभिन्न पूजा-प्रणालियों, उपासना के विविध मार्गों, विभिन्न किस्म के त्यौहारों और कर्मकाण्डों ने हमारी वैयनिक भावनाओं को नियंत्रित कर उन्हें उदात्त बनाकर या स्वस्थ निकास देकर विस्फोटक होने से बताया, अतुप्तियों के दमन को सह्य बना दिया, परिणामतः वासला के तीव्र आघातों से, पाप-बोध से और अपराध की भावना की पीड़ा से हमें बताया। जहां तक सामाजिक स्वास्थ्य एवं शांति का संबंध है, वह हमें मिली परंतु हमारा साहित्य इन स्थितियों से प्रायः वंचित रहा। ग्रीक साहित्य में जो ट्रेजिक जीवन का बोध है, जिसका प्रभाव पाश्चात्य साहित्य पर प्रनुर रूप में पड़ा, वह भारतीय साहित्य में नहीं दिखता। **(3)**

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

हमारे साहित्य में अशुभ की समस्या को विशेष उत्कट रूप में, तर्क और भावना की समस्त शक्तियों को एकाग्र कर चित्रित नहीं किया गया। हमारे अनुभवों पर 'इविल' की शैतानी, टिस, भयावह छाया प्रायः नहीं पड़ी । जहां पड़ी, वहां 'इविल' को स्वतंत्र सत्ता के रूप में नहीं देखा गया। शाप ईश्वरीय लीला, पूर्वजन्म का पाप नियति ऐसे शब्द ये जिन्होंने 'इविल' के रूपों पर अधिक गहराई से सोचने ही नहीं दिया।

भारतीय उपन्यास की अवधारणा एवं स्वरूप को लेकर दो-तीन दशक से विमर्श हो रहा है। इस विमर्श की सकारात्मक परिणति यह हुई कि अब न तो परम्परा के प्रति वैसी मुग्धता दिखाई देती है, न उन टकराहटों, घटनाओं की अवहेलना उपेक्षा की जाती है जिन्होंने भारतीय समाज को प्रभावित किया था। **(4)**

मानवीय स्वभाव में लिहित अशुभ को हमारी चेतना ने स्वीकार नहीं किया क्योंकि मल को अपने मूल रूप में सत्य गुण युक्त हमले माला । रज और तम के विकारों को एकाग्र बनाकर शायद हमले नहीं देखा। हमारे आधुनिक साहित्य में धार्मिकता के मूल्यों के ख़त्म होने की गहरी पीड़ा भी व्यक्त नहीं हुई। साहित्य रचना ईश्वर का अनुपम उपहार है जिसे हर कोई प्राप्त नहीं कर सकता। जिस किसी को यह वरदान प्राप्त हो वह अपनी लगल, कल्पना शक्ति, अथक परिश्रम, तीव्र व तेज दृष्टि अनुभव आदि से अपनी साहित्य साधना को प्राप्त कर सकता है। **(5)**

धर्म को अत्यधिक महत्व देने वाले समाज की यह स्थितियां तो मन का छिछलापन व्यक्त करती है या इस तथ्य का द्योतक है कि धर्म हमारे लिए जितना सामाजिक आत्तरण का माल बना था, उतना आध्यात्मिक व्याकुलता का विषय नहीं। क्या हमारा धर्म और हमारी आध्यात्मिकता, दो अलग चीजें रहीं ?

हमारी साहित्यिक परंपरा भी कुछ इसी प्रकार की रही। हमारा साहित्य सुसंस्कृत नागरिक के लिए है। अर्थात् व्यक्ति के लिए नहीं बल्कि सांस्कृतिक मानों और मूल्यों से संस्कारित 'चरित्र' के लिए ('शुद्ध कविता की खोज' में दिलकर ने व्यक्तित्व और चरित्र के बीच का अंतर बहुत सुंदर ढंग से व्यक्त किया है।) हमारा साहित्य सहृदय के मनः प्रसादन के लिए था। उसे विचलित करले, झकझोरने, अस्वस्थ बनाने के लिए नहीं है। साहित्य के रसों की परिणति 'विश्रांति' अवस्था उत्पन्न करने वाली थी। करुणा, बीभत्स, भयानक रसों की परिणति भी सुखद नमःस्थिति में होना आवश्यक माला गया था। रसों की सुख-दुःखवादी व्याख्या नियम को सिद्ध करने के लिए अपवाद जैसी यी 'सत्य' से सौंदर्य को ही हमले तरजीह दी और यह सौंदयं 'शिव' से मर्यादित या। परिणामतः जीवन का बहुत बड़ा ययार्थ साहित्य में आने से वर्जित रहा है।

पाश्चात्य शिक्षा से जिल मूल्यों को हमले स्वीकार किया, उनकी प्रत्यक्षतः कतिमय सीमाएं थीं। पाश्चात्य मूल्य थोड़े से शिक्षितों तक सीमित रहे और सर्वया पाश्चात्य मूल्यों को (जिनमें विज्ञानवाद, धर्मातीतता बुद्धिवाद, व्यक्तिव्याद प्रमुख मूल्य थे) स्वीकार कर चलने वालों का प्रभाव भारतीय मल पर नहीं पड़ा। उनका पड़ा जिन्होंने मूल भारतीय को सुरक्षित रखकर ही पाश्चात्य विचारों को अपनाया अरविंद घोष, विवेकानंद, तिलक, महात्मा गांधी । विशुद्ध पाश्चात्य संस्कृति को आदर्श मानकर चलने वाले लेखक हमारे यहां जो हुए. उनको स्वीकारा ही नहीं गया ।

फलतः आज भी हमारे साहित्य में भारतीय मन के अनुकूल प्रवृत्तियां जबर्दस्त रूप में साहित्य को प्रभावित कर रही हैं। रोमांटिसिज्म, पुनरुज्जीवलबाद, आदर्शवाद एवं पलायनवाद के विभिन्न रूप-इल प्रवृत्तियों ने भारतीय मानसिकता को बहुत ही जकड़ लिया है। फलतः हमारे साहित्य में वाक्रामकता, संघर्ष, विरोध, वर्जनाओं के विभिन्न रूप (स्वप्न, दिवास्वप्न, फॅटसी, यौन बिबों की प्रचुरता) अकेलेपन की तीव्र पीड़ा इत्यादि का चित्रांकन अधिक पैमाने पर नहीं हुआ-इधर जो हुआ है, उसपर नकलीपन का आरोप किया जाता है-वह बहुत गलत भी नहीं है। इसके कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं। हमारे लेखक साहसी कम है-जब संभोग की स्थितियों का वर्णन करने के स्थल आते हैं तो वे या तो सूचित कर टाल देते हैं। (इसके लिए आलोचक प्रशंसा भी करते हैं, फिर असल में कितनी ईमानदारी से करते हैं. पता नहीं)। अथवा ऐसे प्रसंगों का प्रतीकात्मक वर्णन करते हैं या काव्यात्मक (सूरजमुखी अनोरे) बलाकर छोड़ देते है लारेंस, हैलरी मिलर ('प्लेक्सस','सेक्सस' के वर्णल), लोगोकोव्ह या अल्वतों मोराविया की समानता की बात ही छोड़िये, निकट भी कहीं नहीं आते। संभोग की स्थितियों का अत्यंत ऐंद्रिय, त्तिनात्मक, आवेगपूर्ण चित्रण देने के स्थान पर ये इतिवृत्तात्मक वर्णन करते है अथवा लिजलिजे संकेत भी करते हैं।

संघर्ष का जो एमिल जोला ने 'जमिनल' में भूखी एवं पीड़ित नारियों और उनकी अस्मत का सौदा करने वाले दुकानदार के बीच दिखाया है, वैसा प्रसंग कहीं पढ़ले को नहीं मिला। भूख का जैसा चित्रण डिकन्स के 'ए टेल ऑफ टु सिटीज' में या जोला के 'जमिनल' में मिलता है. अकाल का जीवंत चिंतन 'गुड अर्थ' में मिलता है या मनुष्य की घोर दरिद्रता, वंचना और भूख का प्रत्ययकारी चित्र स्टेल बैंक के 'प्रेप्स आव द रैय' में मिलता है-वैसा भयावह वास्तव का प्रत्ययपूर्ण चित्र कितने भारतीय उपन्यासों में मिलता है

E-ISSN No: 2456-6713 Print ISSN No: 3048-6459

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

? लेखक की शक्ति का एक प्रमाण यह है कि वह प्रसंग का निरूपण या कथन न कर प्रत्यक्ष बिंबात्मक चित्राकल करे। हमारे यहां चरम भावात्मक स्थलों का 'वर्णन' अधिक होता है, चित्रांकन कम। इसका संबंध जीवन का उत्तेजक, उत्कट, तीव्र रूप में अनुभव करने से है-हम शायद उतने मुक्त, स्वच्छंद जीवंत नहीं हो सकते है।

भारतीय साहित्यकार की मानसिकता एक सीमा से बंधी हुई है, जिसमें उनके साहित्यिक, सामाजिक एवं पारिवारिक विचारों के बिंब प्रतिबिंब एवं संकेत मिलते है। अधिकतर साहित्यकारों ने समय एवं स्थिति के अनुसार अपनी सीमाओं, अवधारणाओं एवं विचारों को प्रासंगिक बनाने का प्रयास किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चन्द्रकान्त बान्दिवडेकर, उपन्यास स्थिति और गति, वाणी प्रकाशन लयी दिल्ली, संस्करण 2014 पू. 49
2. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यास और उपन्यासकार, विश्वविद्यालय पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, संस्करण 2009. पू. 1
3. चन्द्रकान्त बान्दिवडेकर, उपन्यास स्थिति और गति, वाणी प्रकाशन लयी दिल्ली, संस्करण 2014 पू. 50
4. आलोक गुप्त, भारतीय उपन्यास की अवधारणा और स्वरूप, राजपाल एण्ड सन्न दिल्ली संस्करण 2012. पू. 1
5. अंजना मुबेल, विवेकीराय का गद्य साहित्य आंचलिकता, परम्परा और आधुनिकता के संदर्भ में, अन्नपूर्ण प्रकाशन कानपुर, संस्करण 2015. पू. 15